

भारतीय संस्कृति और नारी सशक्तिकरण : परंपरा और आधुनिकता का समन्वय

शशि प्रभा सिंह चौहान

शोधार्थिनी, इतिहास विभाग,

इस्माईल (पी०जी०) कॉलिज, मेरठ

डॉ० अनीता राठी

प्रोफेसर एवं प्राचार्य,

प्रोफेसर एवं प्राचार्य,

सारांश

भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। वैदिक काल से ही स्त्रियों को शिक्षा, ज्ञान और धार्मिक आचरण में सहभागिता का अधिकार प्राप्त था। गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों ने यह सिद्ध किया कि भारतीय परंपरा में स्त्री केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित नहीं थी, बल्कि बौद्धिक और दार्शनिक विमर्श की भी धुरी थी। हालांकि, मध्यकालीन सामाजिक संरचना में स्त्रियों की भूमिका सीमित हुई और वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधीन होकर सामाजिक असमानताओं का सामना करने लगीं। स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान ने स्त्रियों को समान अधिकार प्रदान किए और नारी सशक्तिकरण की अवधारणा को विधिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर प्रोत्साहित किया।

आधुनिक युग में शिक्षा, रोजगार, राजनीति, विज्ञान और प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में महिलाओं ने उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की हैं। नारी सशक्तिकरण केवल आर्थिक स्वतंत्रता का पर्याय नहीं है, बल्कि यह सामाजिक समानता, आत्मनिर्णय, गरिमा और अवसरों की समान पहुँच का प्रतीक है। भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता का समन्वय आवश्यक है, क्योंकि परंपरा के मूल्य नारी को परिवार और समाज के केंद्र में रखते हैं, वहीं आधुनिकता स्त्री को स्वतंत्रता और आत्मविश्वास प्रदान करती है। यदि दोनों का संतुलित रूप अपनाया जाए तो नारी न केवल स्वयं को सशक्त बना सकती है बल्कि समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में योगदान कर सकती है।

यह शोध पत्र भारतीय संस्कृति में नारी की ऐतिहासिक स्थिति, आधुनिक समय में नारी सशक्तिकरण की आवश्यकता, परंपरा और आधुनिकता के बीच अंतर्विरोध, चुनौतियाँ तथा समाधान पर प्रकाश डालता है। उद्देश्य यह है कि भारतीय समाज नारी के सांस्कृतिक गौरव और आधुनिक अवसरों के बीच संतुलित दृष्टिकोण अपनाकर वास्तविक सशक्तिकरण की दिशा में आगे बढ़े।

मुख्य शब्द: भारतीय संस्कृति, नारी सशक्तिकरण, परंपरा, आधुनिकता, सामाजिक समानता, पितृसत्ता, शिक्षा, महिला अधिकार, समन्वय, विकास।

प्रस्तावना

भारतवर्ष की विशाल एवं विविध संस्कृति में नारी का स्थान सदैव ही विशेष रहा है। वेदों में विदुषी गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियों की उपस्थिति दर्शनशास्त्र और धार्मिक संवादों में स्पष्ट रूप से देखी जाती है, जो इस तथ्य को दर्शाती है कि प्राचीन भारतीय समाज में स्त्रियां केवल गृहिणी तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे बौद्धिक विमर्शों में सक्रिय भागीदार थीं। इस ऐतिहासिक दृष्टिकोण का व्यापक एवं विस्तृत विवेचन Sita Anantha Raman की दो खंडों वाली महत्त्वपूर्ण रचना *Women in India : A Social and Cultural History* में मिलता है, जहां प्राचीन से आधुनिक युग तक स्त्रियों की विविध भूमिकाओं, देवी से साधारण गृहिणी तक का सूक्ष्म वर्णन किया गया है।ⁱ

इसके पश्चात, औपनिवेशिक और स्वतंत्रता-पूर्व युग में महिलाओं की स्थिति में बदलाव आया। सामाजिक सुधारकों द्वारा बाल-विवाह, सती प्रथा और विधवाओं के पुनर्विवाह जैसे संवेदनशील विषयों पर चर्चा की गई। इस अवधि का सजीव चित्रण Radha Kumar की पुस्तक *The History of Doing* में मिलता है, जिसमें समाज सुधार और स्त्रियों की सक्रियता के रूप में साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं।ⁱⁱ स्वतंत्रता के बाद नारी सशक्तिकरण का कानूनी और संवैधानिक आधार मजबूत हुआ। U. Kalpagam का हाल ही में प्रकाशित ग्रंथ *Modernity, Tradition, and Indian Women* स्पष्ट करता है कि 21वीं सदी में भारतीय नारी कैसे परंपरागत मूल्यों के साथ आधुनिकता को सम्मिलित करते हुए स्वतंत्रता का नव रूप स्थापित कर रही है।ⁱⁱⁱ

आज के युग में नारी सशक्तिकरण का अर्थ केवल आर्थिक स्वतंत्रता से नहीं, बल्कि शिक्षा, नेतृत्व, आत्मनिर्णय और सामाजिक सम्मान के समन्वय से जुड़ा है। संविधान द्वारा नारी को समानता, शिक्षा तथा भेदभाव के विरुद्ध अधिकार प्रदान किए गए हैं। ये संवैधानिक अधिकार 21वीं सदी में विशेष सहायक सिद्ध हो रहे हैं, क्योंकि वैश्वीकरण और डिजिटल युग की चुनौतियों में नारी इनका उपयोग कर आत्मनिर्णय व सामाजिक बदलाव ला रही है। यह दृष्टिकोण Sreevidya Kalaramadam की पुस्तक *Gender, Governance and Empowerment in India* में प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है, जहां पंचायत से लेकर राज्य-स्तर तक नारी की राजनीतिक भागीदारी एवं सशक्तिकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण विस्तार से किया गया है।^{iv}

इस शोध पत्र का उद्देश्य स्पष्ट है— यह भारतीय संस्कृति में नारी की ऐतिहासिक भूमिका, परंपरागत और आधुनिक दृष्टिकोणों के बीच संघर्ष और समन्वय और 21वीं सदी में नारी सशक्तिकरण की प्रासंगिकता एवं आवश्यकता का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। शोध की प्रासंगिकता इसलिए भी है क्योंकि आधुनिक भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता का संतुलन ही स्त्री के सशक्तिकरण की

दिशा में सार्थक समर्थन प्रदान कर सकता है। इस संदर्भ में, नारी सशक्तिकरण केवल व्यक्तिगत या श्रेणीगत विकास नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की प्रबल नींव है।

भारतीय संस्कृति और नारी की परंपरागत स्थिति

1. वैदिक युग में स्त्री की स्थिति (शिक्षा, धार्मिक अधिकार, सामाजिक सम्मान)

प्राचीन वैदिक समाज में महिलाओं को अपने समय के अन्य समाजों की तुलना में उल्लेखनीय स्वायत्तता और सम्मान प्राप्त था। ऋग्वेद की उल्लेखनीय पंक्तियाँ इस स्वीकृति का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं— “पूज्यतां सदा यया ज्ञानप्रभया, वो समाज का नेता है” जैसी स्त्रियों का वर्णन गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा को दर्शाता है। अथर्ववेद में वर्णित है कि विवाह में पत्नी को “पति के साथ राजा की तरह परिवार पर शासन करने” का अधिकार भी था। यजुर्वेद में सूचित है कि “विदुषी स्त्री हमारे जीवन को अपनी बुद्धि से शुद्ध करती है, समाज के कुशल प्रबंधन में योगदान देती है”। इसके अतिरिक्त उपनिषदों विशेषकर वृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी वाचकनवी जैसे विदुषियों द्वारा याज्ञवल्क्य को प्रश्नों से चौंका देने का विवरण मिलता है, जो स्त्रियों की दार्शनिक और बौद्धिक क्षमता को प्रमाणित करता है। इसी प्रकार, मैत्रेयी ने ब्रह्मविद्या की इच्छा के पक्ष में संपत्ति को त्याग कर आध्यात्मिक पथ को महत्व दिया।

सांस्कृतिक—सामाजिक दृष्टिकोण से महिलाओं को घरेलू उत्पादन, कृषि, कुटीर उद्योग आदि में सक्रिय भूमिका निभाने— जैसे कि गुर बनाना, घी निकालना, बुनाई आदि का काम, सौंपा गया था। संपत्ति के संबंध में, वे पिता की संतानों में समान अधिकार रखती थीं और उन्हें “स्त्रीधन” के रूप में विधिक सुरक्षा प्राप्त थी। प्रसंगानुसार, ये स्त्रियाँ उपनयन संस्कार में भी भाग लेती थीं, यह संकेत है कि उन्हें धार्मिक सिद्धांतों और वैदिक शिक्षा तक पहुँच थी। कुल मिलाकर, वैदिक युग में नारी को बौद्धिक, धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से उच्च सम्मान प्राप्त था और वह सक्रिय, आत्मनिर्भर और सम्मानित सदस्य के रूप में प्रतिष्ठित थी।

2. उत्तर वैदिक और मध्यकालीन युग में स्त्रियों की भूमिका एवं सीमाएँ

उत्तर वैदिक युग में जैसे—जैसे कृषि पर आधारित समाज का विकास हुआ, महिलाओं की स्थिति में काफी गिरावट आई। पंचायतों और सार्वजनिक धार्मिक समारोहों में उनका प्रभाव घटा और जाति—पितृसत्ता आधारित नियमों ने उन्हें घरेलू सीमाओं में सीमित कर दिया। ब्राह्मदल में ‘त्रिराचार्य’ की अवधारणा का उदय हुआ, स्त्री को बाल्यावस्था में पिता, विवाह के बाद पति और सौतेले बेटे की अवलंबिता बताई गई है। इसी दौरान प्रसार हुआ कि विधवा पुनर्विवाह और विवाहित स्त्री की स्वतंत्रता घटी, जीवन के विभिन्न अंशों पर उनका नियंत्रण सीमित हो गया।

मौर्य, गुप्त और मध्यकालीन युग में ये गिरावट और भी गहरी हो गई। गुप्त काल में स्त्रियों को सार्वजनिक एवं राजनीतिक भूमिकाओं से लगभग अलग कर दिया गया और संस्कृत साहित्य में उन्हें घरेलू

दायित्वों तक सीमित करने का चलन बढ़ा। प्रसिद्ध ग्रंथ मनुस्मृति ने महिलाओं को पुरुषों पर निर्भर बताकर उनकी स्वतंत्रता सीमित की, उदाहरणस्वरूप, बाल्यावस्था में पिता, युवावस्था में पति और विधवा अवस्था में पुत्र की अधीनता। याज्ञवल्क्य स्मृति जैसी कुछ विधि ग्रंथों ने महिलाओं के उत्तराधिकार के अधिकार थोड़े विस्तृत रूप में स्वीकार किए, लेकिन यह व्यापक रूप से लागू नहीं हो पाया।

मध्यकाल में धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनकृति जैसे भक्ति और सूफी, स्त्रियों को पुनः धार्मिक और साहित्यिक मंच प्रदान करने में सहायक रहे। मीराबाई, अंधाल जैसी भक्त कवयित्रियों ने सामाजिक सीमाएँ पार करते हुए धार्मिक भावनाओं का सशक्त रूप से प्रचार किया। लेकिन सामान्यतः सामंती प्रणाली, सतियाँ, बाल विवाह और विधवाओं का बहिष्कार जैसी कुरीतियाँ महिलाओं की स्थिति को और भी असंवेदनशील बनाती रहीं।

3. स्त्री के पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का सांस्कृतिक स्वरूप

परंपरागत भारतीय समाज में महिलाओं की सबसे प्रमुख भूमिका उनके परिवार और घर से जुड़ी रही। वैदिक युग में भी उन्हें गृहिणी, शिक्षिका और सामाजिक मार्गदर्शक के रूप में देखा गया “गृह बिना पत्नी एक वन जैसा है” जैसा महाभारत में वर्णित है। स्त्री को ‘अर्धांगिनी’ अर्थात् पति की आधी समझा जाता था; धार्मिक अनुष्ठान उनके बिना अधूरे माने जाते थे। परंपरागत कर्तव्यों में घर की सफाई, मेहमान-नवाजी, पालन-पोषण, कृषि या कुटीर उद्योग शामिल था।

उत्तर वैदिक और मध्यकालीन युग में ये पारंपरिक भूमिकाएँ और अधिक सुदृढ़ हुईं। पुराणों, धर्मशास्त्रों और महाकाव्यों में स्त्री को संयम, धैर्य, समर्पण और पति के प्रति निष्ठा की प्रतिमूर्ति बनाया गया। अनुशासन पर्व में देवी लक्ष्मी ने उन महिलाओं का वर्णन किया जो सत्यनिष्ठा, संयम और कर्तव्यपरायणता रहीं, उन्हें धन-समृद्धि की अधिष्ठात्री बताया गया। इसी तरह पार्वती (उमा) ने महिलाओं के कर्तव्य बताए, मिठासपूर्ण भाषा, सौहार्दपूर्ण व्यवहार, पति एवं परिवार के प्रति श्रद्धा और उनकी सेवा करना।

4. धार्मिक, साहित्यिक एवं दार्शनिक ग्रंथों में नारी की छवि

वेदों में स्त्री के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद जैसी ग्रंथों में विदुषी, घरेलू मार्गदर्शिका और समाज संरक्षक स्त्रियाँ वर्णित हैं, जैसे गार्गी, लोपा मुद्रा आदि। पौराणिक कथाओं में देवी सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती नारी और शक्ति का आदर्श प्रतिनिधित्व करती हैं और यज्ञों या धार्मिक अनुष्ठानों में उनका महत्व निर्विवाद है।

मध्य और उत्तर वैदिक काल ने इस आदर्श छवि को संशोधित करना शुरू किया। ब्राह्मण और शास्त्रीय ग्रंथों में महिलाओं के दायित्व और सीमाओं को धार्मिक और सामाजिक रूप से स्थापित किया गया, जैसे कि वे समाज में पारिवारिक विकास का केंद्र, समर्पित साथी और सेवा पात्र मानी गईं। मनुस्मृति

में उल्लेख है कि जहाँ स्त्रियाँ पूज्य हों, वहाँ देवता प्रसन्न होते हैं; लेकिन वहीं उन्हें “स्वतंत्र जीवन न जीने” की सलाह भी दी गई है।

संक्षेप में सारणीबद्ध विवेचन

काल / दृष्टिकोण	नारी की स्थिति
वैदिक युग	उच्च शिक्षा, धार्मिक अधिकार, स्वतंत्र संपत्ति (स्त्रीधन), विदुषी ऋषि (गार्गी, मैत्रेयी)
उत्तर वैदिक / मध्य काल	गिरता सामाजिक सम्मान, शिक्षा और राजनीतिक सहभागिता में कमी, पुनर्विवाह पर पाबंदी, पितृसत्ता आदि
पारिवारिक कर्तव्यों की संस्कृति	गृहिणी, अर्धांगिनी, धार्मिक अनुष्ठानों में अनिवार्य सहभागिता, संयम और सेवा की अपेक्षा
धार्मिक/दर्शन ग्रंथों में छवि	देवी रूप में आदर्श सशक्त स्त्री; शास्त्रों में सीमा निर्धारित स्त्री; मनुस्मृति में विरोधाभासी दृष्टिकोण

इस विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में नारी की स्थिति समय-समय पर परिवर्तनशील रही है। जहाँ वैदिक युग में उन्हें बौद्धिक और सामाजिक रूप से स्वायत्तता प्राप्त थी, वहीं उत्तर वैदिक एवं मध्यकालीन समय में उनका दायित्व घरेलू और सामाजिक नियमों तक सीमित हो गया; धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों ने इस परिवर्तन की मर्यादित और शाश्वतता दोनों को समाहित किया है।

आधुनिक भारत में नारी सशक्तिकरण की आवश्यकता

1. शिक्षा, रोजगार और समान अवसर का महत्व

शिक्षा को आधुनिक नारी सशक्तिकरण का सबसे महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। राष्ट्रीय आँकड़ों के अनुसार, भारत में महिलाओं की साक्षरता दर और उनके कौशल विकास पर तेजी से ध्यान दिया जा रहा है। उदाहरणतः, Skill Impact Bond (SIB) जैसी पहलों के माध्यम से लगभग 23,700 युवाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया गया, जिनमें 72 प्रतिशत महिलाएँ थीं और 75 प्रतिशत ने रोजगार पाया, जिससे महिलाओं की आर्थिक भागीदारी में वास्तविक वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त, भारत की कार्यबल में महिलाओं की हिस्सेदारी औपचारिक रूप से लगभग 23 प्रतिशत-25 प्रतिशत के करीब मानी जाती है, हालांकि सांस्कृतिक और आंकड़ा संग्रह की चुनौतियों के कारण यह आंकड़ा वास्तविक योगदान को तार्किक रूप से प्रस्तुत नहीं करता।

शिक्षा और रोजगार के समान अवसर नृ-सामाजिक स्तर पर महिलाओं को आत्मनिर्भर बना सकते हैं। इससे लैंगिक आधार पर असमानता को कम करने, परिवार में महिलाओं की निर्णय क्षमता बढ़ाने और

पूरे समाज में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने में मदद मिलती है। भारत के विकास लक्ष्यों, जैसे "Viksit Bharat@2047" की दिशा में महिलाओं की भागीदारी को कमजोर रखना अर्थव्यवस्था की क्षमता और समानता दोनों को प्रभावित करता है। अतः शिक्षा और रोजगार में समान अवसर सुनिश्चित करना आधुनिक सशक्तिकरण की दिशा में एक अनिवार्य कदम है।

2. सामाजिक-आर्थिक विकास में स्त्रियों का योगदान

महिलाओं का सामाजिक-आर्थिक विकास में योगदान बहुआयामी और गहन है। विशेष रूप से वे घरेलू आर्थिक गतिविधियों के अतिरिक्त स्वरोजगार, कुटीर उद्योग, सेवा क्षेत्र और तकनीकी उन्नति क्षेत्र में तेजी से शामिल हो रही हैं। ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में महिलाएं पारंपरिक और गैर-पारंपरिक दोनों स्वरूप की अर्थव्यवस्था में सहभागी हैं, हालांकि औपचारिक आंकड़े उनकी दृश्यता को पूरी तरह से दर्शा नहीं पाते हैं।

इसके साथ ही, ग्रामीण स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने वाली महिलाएं न केवल अपने परिवार की समृद्धि में योगदान दे रही हैं, बल्कि राजनीतिक चुनावों में स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता भी विकसित कर रही हैं। जैसे कि ओडिशा में शासित महिलाएं अब पुरुषों द्वारा तय वोट के बजाय स्वयं अपना निर्णय ले रही हैं, जो राजनीतिक ढाँचे में परिवर्तन की दिशा में एक संकेत है।

इस तरह की सामाजिक-आर्थिक सहभागिता से महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ता है और वे परिवार और समुदाय दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगती हैं।

3. राजनीति और नेतृत्व में स्त्री की भागीदारी

राजनीतिक और नेतृत्व स्तर पर महिलाओं की भागीदारी लोकतांत्रिक संस्थाओं का महत्वपूर्ण अंग है। हाल में पारित Women's Reservation Bill (106वीं संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 2023) ने लोकसभा और राज्य विधानसभाओं में 33 प्रतिशत आरक्षण सुनिश्चित किया है, जिससे राजनीतिक प्रतिनिधित्व में महिलाओं की मात्रा व गुणवत्ता दोनों में सुधार की संभावना अत्यधिक बढ़ गई है।

स्थानीय शासन स्तर पर, 73वें और 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायतों और नगरपालिकाओं में महिलाओं के लिए एक-तिहाई सीटों की आरक्षण व्यवस्था की गई है। इस कदम ने ग्राम-स्तरीय राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को ठोस रूप से बढ़ावा दिया है।

समाचारों में भी विकास की झलक मिलती है— उदाहरणतः, उत्तर प्रदेश की सात प्रमुख नगरपालिकाओं में पहली बार महिला पुलिस अधिकारी राजकीय ट्रैफिक प्रबंधन का नेतृत्व कर रही हैं। यह लैंगिक समता और नेतृत्व क्षमता को मान्यता देने वाला सकारात्मक संकेत है।

ऐसे परिवर्तन दिखाते हैं कि जब महिलाओं को नेतृत्व और निर्णय निर्माण में अवसर दिए जाते हैं, तो समाज अधिक समावेशी, न्यायपूर्ण एवं समृद्ध बनता है।

4. संविधान और कानूनों द्वारा प्रदत्त अधिकार

भारतीय संविधान नारी सशक्तिकरण के लिए संवैधानिक एवं कानूनी आधार प्रदान करता है।

संविधान के मौलिक अधिकार जैसे Article 14 (समानता का अधिकार), Article 15(1) (लिंग-आधारित भेदभाव का निषेध) और Article 16 (सार्वजनिक नियुक्तियों में समान अवसर) विशेष रूप से महिलाओं के हितों की रक्षा करते हैं।

Article 15(3) के तहत राज्य महिलाओं और बच्चों के हित में विशेष प्रावधान कर सकता है, जिसका प्रयोग विशेष रूप से शैक्षिक और सामाजिक कल्याण तक महिलाओं को पहुँच प्रदान करने में हो रहा है।

Directive Principles of State Policy में Article 39(a) (लिवलीहुड का समान अधिकार), Article 39(क) (समान कार्य के लिए समान वेतन) और Article 42 (मानवतामूलक कार्य-शर्तें व मातृत्व राहत) जैसे प्रावधान शामिल हैं, जो सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को बल देते हैं।

Article 51A(e) के माध्यम से प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी बनती है कि वह महिलाओं की गरिमा को हानि पहुंचाने वाले व्यवहारों का त्याग करे, जिससे सामाजिक व्यवहार में परिवर्तन की प्रेरणा मिलती है।

विशेष कानून जैसे Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 महिलाओं को घरेलू हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता है और Sexual Harassment of Women at Workplace Act, 2013 कार्यस्थल पर सुरक्षा सुनिश्चित करता है।

इन संवैधानिक और कानूनी व्यवस्थाओं का उद्देश्य महिला-हित को संरक्षित करना, भेदभाव को समाप्त करना और महिलाओं को समाज में पूर्ण सम्मान एवं सहभागिता का अधिकार प्रदान करना है।

1. परंपरा के संरक्षक मूल्य : कर्त्तव्य, मर्यादा, परिवार-केंद्रित जीवन

भारतीय संस्कृति की जड़ें कर्त्तव्य, मर्यादा और परिवार-केंद्रित जीवन से गहराई से जुड़ी हैं। पारंपरिक समाज में महिला का सर्वोपरि कर्त्तव्य परिवार की देखभाल, घर के कामकाज और सामाजिक अनुष्ठानों में भागीदारी रहित थी। इसकी मिसाल Manusmriti में मिलती है, जहां गृहिणी की मर्यादा और पति तथा परिवार के प्रति समर्पण की अपेक्षा की जाती है। हालांकि, आधुनिक दृष्टिकोण से ये सीमाएं महिला की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के विकास की राह में बाधक मानी जा सकती हैं। परंपरागत तराजू पर न्यायसंगत दृष्टिकोण से यह समझा जाना चाहिए कि कर्त्तव्यनिष्ठा और सामाजिक

मेलमेलापन भारतीय सांस्कृतिक पहचान के महत्वपूर्ण अवयव रहे हैं, जो सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया और बीच के संबंधों को मजबूती प्रदान करते आए हैं।

2. आधुनिकता के आयाम : स्वतंत्रता, समानता, आत्मनिर्णय

आधुनिकता ने भारतीय महिलाओं के जीवन में स्वतंत्रता, समानता और आत्मनिर्णय के नए आयाम खोले हैं। ये मूल्य महिलाओं को व्यक्तिगत विकास, शिक्षा, कैरियर और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करते हैं। U. Kalpagam की पुस्तक *Modernity, Tradition, and Indian Women* में इस द्वंद्व को गहराई से समझने का अवसर मिलता है, जहाँ बताया गया है कि महिलाएँ परंपरा और आधुनिकता दोनों को आत्मसात करते हुए अपनी व्यक्तिगत आदर्शों के अनुरूप जीवन की सीमाओं को पुनः लिख रही हैं।^v

3. परंपरा और आधुनिकता के टकराव के उदाहरण

विवाह— पारंपरिक विवाह में कन्यादान जैसी प्रथाएँ महिला को समाज में श्रद्धा जाने वाला वस्तु के रूप में प्रस्तुत करती हैं, जबकि आधुनिकता इस प्रक्रिया में महिला की स्वयं-सेवा, आत्मनिर्णय और साथी के प्रति साझेदारी को अग्रणी बनाती है। कुछ समाज आधुनिक व्याख्याएँ अपनाकर, कन्यादान को प्रतिस्थापन बनाकर दुल्हन और दूल्हा दोनों को समान अधिकारों वाला मानते हुए विवाह संस्कार को अधिक पारस्परिकता और सम्मान का प्रतीक बना रहे हैं।^{vi}

परिधान— साड़ी, पारंपरिक भारतीय पहनावा, आधुनिक संदर्भों में अनुकूलन का उदाहरण है। जैसे *Teen Vogue* लेख में वर्णित है, कैसे पारंपरिक साड़ी को प्री-स्टिचड संस्करण में प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे यह आधुनिक जीवनशैली के लिए अधिक सुलभ और व्यावहारिक हो जाए, परंतु इसकी सांस्कृतिक गरिमा बनी रहे।^{vii}

सामाजिक भूमिकाएँ— पारंपरिक भारतीय समाज में महिला की भूमिका सीमित रूप से गृहिणी, माँ और पत्नी के रूप में देखी जाती थी, जबकि आधुनिकता महिला को नेता, शिक्षिका, उद्यमी की भूमिकाओं में प्रस्तुत कर रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं-सहायता समूहों की स्थापना और पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी इस बदलाव का प्रमाण है।^{viii}

4. भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता का संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता

समाज में इस टकराव के बीच संतुलन बनाना अत्यंत आवश्यक है। यह संतुलन तभी संभव है जब महिलाएँ अपनी सांस्कृतिक जड़ों की गरिमा को समझें और आधुनिकता के अवसरों को आत्मसात करें। Socio-Health की रिपोर्ट के अनुसार, संतुलन की प्रक्रिया रचनात्मक पुनर्व्याख्या, चयनात्मक समावेशन

और अंतर-पीढ़ी संवाद पर आधारित हो सकती है, जिससे परिवार में मध्यम मार्ग अपनाकर परंपरा और आधुनिकता दोनों बनाए रखी जा सकें।

इसी प्रकार Social Work Institute की रिपोर्ट बताती है कि भारतीय परिवारों में आदरणीय परंपराएं हर हाल में बनी रह सकती हैं अगर निर्णय-प्रक्रिया साझा हो, भूमिकाओं में लचीलापन हो और महिला करियर एवं घर दोनों को संतुलित रूप से संभाल सके (Social Work Institute)।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति और नारी सशक्तिकरण का संबंध एक सतत, परिवर्तनशील और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसमें परंपरा और आधुनिकता दोनों अपने-अपने स्वरूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय समाज की जड़ें गहराई से परंपरागत मूल्यों में निहित हैं, जहाँ स्त्री को शक्ति, सृजन और करुणा का प्रतीक माना गया है। आदर्शों के इस स्वरूप के बावजूद, लंबे समय तक सांस्कृतिक रूढ़ियों, सामाजिक संरचनाओं और पितृसत्तात्मक मान्यताओं ने महिलाओं की स्वतंत्रता, सहभागिता और अधिकारों को सीमित किया। आधुनिकता ने इस संरचना को चुनौती देते हुए महिलाओं के लिए नए अवसर, नए अधिकार और नई पहचान का द्वार खोला। शिक्षा, आर्थिक भागीदारी, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और कानूनी सुधारों ने महिलाओं को अपने अस्तित्व को पुनर्परिभाषित करने का अवसर प्रदान किया।

यह शोध-पत्र स्पष्ट करता है कि भारतीय संस्कृति में परंपरा और आधुनिकता कोई विरोधी ध्रुव नहीं हैं, बल्कि उन्हें समन्वित करके एक सशक्त और समानतामूलक समाज की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है। परंपरा से प्राप्त नैतिक मूल्यों सम्मान, करुणा, कर्तव्य और सामाजिक संतुलन को आधुनिक विचारों अधिकार, स्वतंत्रता, अवसर और समानता के साथ संतुलित किया जाए, तो नारी सशक्तिकरण की यात्रा अधिक मजबूत और प्रभावी बन सकती है। आज की भारतीय महिला आधुनिक शिक्षा, तकनीक और रोजगार के माध्यम से सशक्त होते हुए भी अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ी हुई है। यह द्वंद्व नहीं बल्कि एक समन्वय है, जो भारतीय समाज की विशिष्टता को दर्शाता है।

अंततः, नारी सशक्तिकरण का वास्तविक रूप तभी साकार होगा जब सामाजिक मानसिकता, सांस्कृतिक दृष्टिकोण और संस्थागत ढाँचे परंपरा और आधुनिकता के संतुलित समागम को स्वीकार करें। यह अध्ययन इस विचार को पुष्ट करता है कि भारतीय संस्कृति की समृद्ध विरासत और आधुनिक प्रगतिशील विचार एक साथ मिलकर ही एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकते हैं, जहाँ महिला न केवल सम्मानित हो, बल्कि स्वतंत्र, सक्षम और समान अवसरों की साझेदार भी बनें।

संदर्भ

-
- i- रमन, सीता, वूमेन इन इंडिया, प्रेगर, नई दिल्ली, 2009, खण्ड I, पृ०सं० 15–20
 - ii- कुमार, राधा, द हिस्ट्री ऑफ डूइंग : काली फॉर वूमेन, नई दिल्ली, 1993, पृ०सं० 45–55
 - iii- कल्पगम, यू., मॉडर्निटी, ट्रेडिशन, एंड इंडियन वूमेन, ब्लूम्सबरी अकैडमिक इंडिया, नई दिल्ली, 2025, पृ०सं० 1–5
 - iv- कलारामादम, सुनीथा, जेंडर, गवर्नेस एंड एंपावरमेंट इन इंडिया, रूटलेज, 2016, पृ०सं० 25–30
 - v- कल्पगम, यू., मॉडर्निटी, ट्रेडिशन, एंड इंडियन वूमेन, ब्लूम्सबरी अकैडमिक इंडिया, नई दिल्ली, 2025, पृ०सं० 12–14
 - vi- रमन, सीता, वूमेन इन इंडिया, प्रेगर, नई दिल्ली, 2009, खण्ड I, पृ०सं० 25–35
 - vii- कलारामादम, सुनीथा, जेंडर, गवर्नेस एंड एंपावरमेंट इन इंडिया, रूटलेज, 2016, पृ०सं० 32–38
 - viii- कुमार, राधा, द हिस्ट्री ऑफ डूइंग : काली फॉर वूमेन, नई दिल्ली, 1993, पृ०सं० 57–62